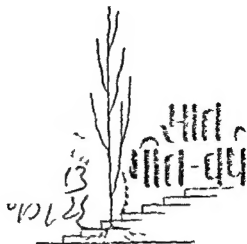


धर्मवीर भारती



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला ग्रन्थाक—९१
सम्पादक एव नियामक
लक्ष्मीचन्द्र जैन

SAAT GEET VARSHA
(Poems)
Dr DHARMAVEER BHARATI
Bharatiya Jnanpith Publication
Second Edition 1964
Price Rs 3/50

o

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
प्रधान कार्यालय
९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता २७
प्रकाशन कार्यालय
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी ५
विक्रय केन्द्र
३६२०।२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली ६
द्वितीय सस्करण १९६४
मूल्य तीन रुपये पचास नये पैसे

सन्मति मुद्रणालय, वाराणसी—५

अनुक्रम

प्रमथ्यु गाथा	१५
नया रस	२५
नवम्बर की दोपहर	२७
फागुन के दिन की एक अनुभूति	२९
उत्तर नहीं हूँ	३०
जिज्ञासा	३२
संक्रान्ति	३५
पराजित पीढ़ी का गीत	३६
कौन चरण ?	३९
इनका अर्थ	४३
गैरिक वाणा	४६
केवल तन का रिश्ता	४८
मध दुपहरी	५०
प्लेटफॉर्म	५२
इतने दिन बाद	५३
कस्बे की शाम	५४
धूल भरी आँधी का गीत	५६
आँगन	५८
अवशिष्ट	५९
उपलब्धि	६०
स्वयम् को दुहरायेगा ?	६१
साबुन थाइन	६२
रात अँधियारी हवा तेज	६४
आस्था	६६
निर्माण योजना	६७
गुलाम बनानेवाले	७१
एक वाक्य	७३

बाणभट्ट	७४
बृहन्नला	७६
टूटा पहिया	७९
एक अन्तराल में	८१
दान प्रभु के नाम	८३
अर्द्धस्वप्न का नृत्य	८५
बातें	८८
साँझ के बादल	९०
यह ढलता दिन	९२
धुँधली नदी में	९४
शाम तीन मन स्थितियाँ	९६
अँधेरे का फूल	९९
यादों का बदन	१००
आँगन बेला	१०१
ठाठ चाँदनी	१०२
दिन ढले की बारिश	१०४
शाम एक थकी लड़की	१०६
अन्तर्ध्यान यात्रा	१०८
एक छवि	११०
चैत का एक दिन	११२
फूल सागर साथी	११४
दूसरे दिन सुबह	११६
अँजुरी भर धूप	११८
घाटी का बादल	१२०

तथा रचना प्रक्रिया पर कुछ शब्द पृ० ५

क्षण,

काव्य सृजनका,

सच है कि सबसे महत्त्वपूर्ण बिंदु है – लेकिन शायद वही है जिसके बारेमें स्वयं रचनाकार भी कठिनतासे ही कुछ निश्चयपूर्वक कह सकता है। वैसे तो मनपर उस क्षणका स्वाद बहुत तीखा छूट जाता है लेकिन जब उसे प्रकट करनेकी चेष्टा करो तो लगता है कि यह तो न मालूम कितने जाने अनजाने स्वादोंका सम्मिलित स्वाद है जिसके संवेदनको ठीक ठीक व्यक्त कर पाना असम्भव सा ही है। एक हिचक मनमें और होती है कि जो कुछ कहने-सुनने लायक था वह तो एक एक बूँद काव्यकृतिमें उँडेलकर वह क्षण रीत गया, अब अपनी याददाश्तमें उसे फिरसे सम्पुंजित करनेकी चेष्टा भी करें तो ऐसा न हो कि उसका आस पास, परिस्थिति, समय, स्थान और आसंग तो वापस खोजे जा सकें – मगर उसका मर्म, उसका सारतत्त्व छूट ही जाये।

कई बार समकालीन लेखकोंकी रचना प्रक्रियाके ऐसे मांसल विवरण देखनेको मिले हैं पर उन्हें देखकर बहुधा यही भावना हुई है कि वे अजायबघरमें रखे हुए जलपाखी हैं खालमढ़े मृतरूप जिनमें रूप रंग, आकार, पंजे, पंख सब जुटा दिये गये हैं किंतु गायब है तो केवल उसकी उड़ान – पूर्णिमाकी रातको चन्द्रमा और समुद्रके बीच उसकी आकुल आवेग भरी उड़ान और गायब है उसकी अजीब सी चीत्कार – भय, वन्ना, उल्लास उन्मत्त वासना, विजय और आकांक्षासे भरी हुई। अजायबघरका पाखी दूसरे दिन सुबह बालूपर छूट गया उसका अवशेष है – जल पाखी नहीं।

एक ओर यह दुस्तर काय और दूसरी ओर यह मेरा अजीब सा मन जिसे उन्मुख करो पूरबकी ओर तो भागेगा दूर पश्चिमकी ओर। नियोजित करो अपने काव्य सृजनके क्षणोंको पुनः स्मरण करनेको तो अन्यत्र पर उस व क्षण

याद आयेंगे जो मनपर जाने कब अपनी छाप छोड़ गये हैं लेकिन कोई गुंजलक उनका दूसरा स्थान नहीं रही है। विष्णुकी एक पानी नाम अधरात गाता अपने पुराने घरके ऊपर पश्चिमवाली छत भागाभाग रहता वहाँ गवैये बाजावले रास्ता पत्थर लाल उसपर नारोह पर, बीमार पत्नीका मुरझाया चेहरा जागते हुए महफिलदार गुंट और यह और वह और तमाम ऐसे लेकिन सब परस्पर असम्बद्ध, और इनका क्रम जिनका कोई दूसरा सूत्र भी नहीं जुड़ता।

लेकिन इन सबके बीच रह रहकर मन एक स्मृति चित्रपर बार-बार आ टिकता है बहुत पुराना, लेकिन अब भी बिल्कुल ताजा।

बच्चेको नींदमें सुन जगा लिया गया है और ले जाया जा रहा है घनघोर अँधेरेमें गाँवके बाहर ऊबड़-खाबड़ रास्ते परसे खेत टीला पगडंडी बीचमें, भागा दूर, नहर-वाली अमराईमें जहाँ देवीका मन्दिर है। दीवालीकी छुट्टियाँ मनाने बहनके घर आया हूँ इस छोटे-से घरमें भरे उदास टूटे फूटे पुराने कस्बेमें जहाँ सूरज डूबते ही रात हो जाती है सड़कें वीरान हो जाती हैं। मगर आज रात भर अँधेरेमें पगध्वनियाँ सुनाई देंगी क्योंकि आज आधीरात देवीकी पूजा होती है और पीपलके चबूतरेपर चादर चढ़ती है — उन पगध्वनियोंमें एक नन्ही सी पगध्वनि मेरी भी है लेकिन डगमग क्योंकि मेरा आराम अब भी नींद है और अधनींदा चल रहा हूँ और घरवाले मेरा हाथ पकड़े हैं। अच्छी तरह याद है मुझे वह क्षण। अध-नींदमें मुझे सामने कुछ नहीं दीखता सिवा टॉर्चसे गिरा एक उजालेका गोल टुकड़ा जिसके पीछे मैं और स्थिर है वह उजालेका वृत्त और स्थिर हूँ मैं — चल रही है केवल वह पगडण्डी, कंकड़, पत्थर, मेड़, खेतपर से सरकती आती

हुई, उस उजल वत्तमेन्से टेढे मेढे वल खाती हुई, मेरे पावोके नीचे विलुप्त होती हुई। खडा हूँ मैं – स्थिर, नीद हवा और अँधेरेमें चल रही ह खुशबुएँ कुछ जानी कुछ अनजानी – अभी नम गोबरकी सर्द खुशबू, अभी अँधेरेमे सुखते उपलाकी, अभी कटी हुई कुट्टीकी, अभी वातुलसाकी, अभी जगन्ने कबूतराने रातरँगे पखावी मानो म स्थिर खडा हूँ और रास्ता और उसका परिपार्श्व अस्माता आता हुआ मुझम से गुजरता जाता ह।

कब रास्ता खत्म हुआ कब अँधेरा फट गया कब अकस्मात शायमें-से एक जगमग दृश्य प्रकट हो गया मेरे सामने – यह याद नही। सामन हैं मंदिर, चबूतरा गैसके हण्डे, शहनाइया, झाँझ हारमोनियम कव्वाली, अगर बत्तिया, आते हुए लाग, जाते हुए लोग पुकारते हुए लोग, बोलते हुए लोग।

जब जाग गया हूँ मैं, जी रहा हूँ, सक्रिय हूँ। सब चीजें अपनी जगह स्थिर ह, यहातक कि बेहद शोरवाली भीड भी केतलीमे खलभलाते जलकी तरह चचल मगर अपनी परिधिमें स्थिर है। चल रहा हूँ केवल मैं। एक जगह गुमसुम खडा मैं आ रहा हूँ, जा रहा हूँ, इसमें स उसमें-से – स्तब्ध बगलसे, उसके पाससे नहरकी पुलियाके पास गुमसुम खडा मैं।

काफी देर हो चुकी ह। घरवाले सुबह तक यही जाग रण करेंगे। मुश्किलसे इजाजत मिली है घर लौटनेकी अकेले। मैं मुडा – रोशनीका जगमगाता द्वीप पीछे छुट गया – सामने है अँधेरेका विशाल समुद्र अथाह दूर तक फला हुआ।

दशयान्तर। लौट रहा हूँ जहाँस आया था वही। सब कुछ वही ह पर इतनी ही देरम कुछ भी तो वही नही। वहाँ ह व जो मेरे साथ थे। वहाँ ह प्रकाशवृत्तके पीछे मेरी स्थिरता। हाथाम टॉर्चकी रोशनी ह लेकिन अथाह अँधेरेमें क्षुद्र, असहाय, अनिश्चयग्रस्त धुँधली, सहमी हुई, पथके

हर गन्ध टकराकर टूटती हुई, हर पानीमें उतरकर तार तार होती हुई

और पहली बार तो लगा था, इस बार कहाँसे आ गये ये कटे पड़ावे ठूँठ, प्रेत झाड़ियाँमें छिपी अजाने भयकी चमकती आदमखोर आँखें, पागराते अँधे जलपर तरती गूँगी छायाएँ और मेरा गला सूखने लगा कब पाँवोंमें ताकत जाने सी लगी मैं नहीं जानता। और पहली बार, पहली बार मेरे उस किशोर मनको लगा कि मैं अथाह शून्यके समक्ष खड़ा हूँ। मृत्यु नहीं आपदा नहीं, — शून्य।

पीछे मुड़कर देखा मन्दिर और गगनी और भीड़ भाड़ अँधेरेमें विलीन हो चुके थे। लगता था कि विशाल जलयान टूट गया और डूब गये लोग और अब मैं पुकारूँ भी तो कोई बचाने नहीं आयेगा।

और सामने देखा और याद करनेकी कोशिश की पुराना कस्बा और धीमी लालटेनमें बच्चोंको सुलाकर जागती हुई बहनका ममता भरा चेहरा — पर वह भी उस अँधेरेमें नहीं दीखा नहीं दीखा। वह ऐसा भविष्य लगा जो बीत गया अब कितना भी चाहूँ वापस नहीं मिलेगा।

कितना अजीब अकेलापन — राह है कदम हैं घर है लेकिन कुछ भी नहीं। एक विराट अनस्तित्व। अँधेरा अनिश्चय विराट अथाह और उसके समक्ष मैं — निहत्था — अपने अतीत और भविष्यसे भी वंचित। जहाँ पहुँचा था वहाँसे चला हूँ जहाँसे चला था वहाँ जा रहा हूँ पर जहाँ पहुँचा था वह डूब चुका है और जहाँ जाना है वह पता नहीं अँधेरेके पार है भी या नहीं।

एक विराट अनस्तित्व शून्य अन्धकार

शायद यह यात्रा हम जीवन भर करते रहते हैं और कितनी बार, कितनी बार यह अनस्तित्व यह शून्य हमको जीने लगता है और हम पाते हैं कि हमारा समस्त आस पास उजाला, भीड़ भाड़, विनान स्नान अकस्मात अनस्तित्व-

में लीन हो गया हैं। है, लेकिन नही हैं। अँधेरेमें हैं हम — अकेले, निहत्थे, असहाय ! या शायद हम भी नही सिर्फ प्रगाढ अन्धकारमें निहत्थे हाथोकी टटोल, खोज लेकिन फिर हम पाते हैं कि हम बच गये हैं । होता क्या है कहना कठिन है। बाहर सिर्फ इतना होता है कि यन्त्र चालित गतिसे कदम उठते जाते हैं। इस दौरानमें अन्दर क्या घटित होता है इसका अनुमान करना कठिन है।

शायद होता यह है कि हमारे अतीत और भविष्य-का जगत दोनो अकस्मात मिथ्या पड जाते हैं। बीचमें बच जाते है हम, वर्तमान क्षणके वटपत्रपर, और ताकि हम जीते रहें — ससारको पुन उत्पन्न होना पडता है भयम से, यातना में से, शून्यमें-से।

या शायद ससार यथावत् रहता है केवल अतीत और भविष्यसे पणत विच्छिन्न होकर हम अपने अन्दर कही मृत हो जाते है और उस क्षणमें फिर हम अपनेको रचते है और फिर सबको नये सिरेसे धारण करते है।

या शायद न ससार नष्ट होता है न हम। केवल हमारी पुरानी जगत्-चेतना अकस्मात बिलकुल शून्य पड जाती है — अतीत और भविष्यके प्रति, बाह्य और अन्तरके प्रति हमारे सारे अद्यावधि स्थापित सम्बन्ध अकस्मात टूट जाते हैं और हम फिर नितान्त शून्यमें-से उबरकर उन सम्बन्ध-सूत्रोको नये स्तरपर जोडते है और अपने नव रचित सम्बन्धोके वर्तमानके आधारपर हम अपने अतीत और भविष्यकी नित नूतन उपलब्धि करते हैं।

शायद

हाँ यह 'शायद' बहुत महत्त्वपूर्ण है। शायद इनमें-से कोई एक प्रक्रिया घटित होती है, या शायद सब होती है, या शायद कोई नही होती। होता है कुछ और

शायद हम भी रहते है और ससार भी। नष्ट कुछ नही होता। जहाँसे हम चलते हैं वह भी और जहाँतक हम पहुँचते है वह भी। हम दोनोको जी चुके होते हैं

अपनेम धारण किये हुए होते ह लेकिन अकस्मात किसी एक क्षणमें हम पाते ह कि यह सब ह तो पर अकस्मात् हमारे लिए अथहीन हो गया ह, अनिश्चित हो गया है। और हम विराट शून्यमे अकेले छूटते जा रहे ह और हम अकेले छूटना नही चाहते। जीना चाहते है और अनस्तित्वमें-मे अस्तित्व पानेके लिए अभि यक्त करना चाहते है अपनेको, और बिना ससारके हम अपनेको अभिव्यक्त कैसे करेंगे, अत हम किसी एक स्तरपर मूल्य और अथ देते ह हर चीजको और हर चीजके माध्यमसे अपनेको। पाये हुए और पाकर खोये हुए ससारको किसी एक स्तरपर 'रचते ह। ऐसे स्तरपर जहां कुछ भी फिर कभी धुंधला और अथहीन न पडे।

जीवनमें जिये हुए अनुभवा, सवेदना, पीडाओ और सुखाम तथा काव्यमे रचे हुए पीडाओ, सुखा और सवेदना वाले जीवनम शायद यही सम्बध ह और यही अतररेखा। अपनी चरम निजी अनुभूति और व्यापक ससार, क्षण और निरवधि कालके बीच अँधेरी राहपर कही एक भूमि है जहां शून्यको पराजित कर हम 'रचते है स्थायित्व देनेके लिए और साथकता पानेके लिए। जो पाकर खोया जा सकता ह उसे रचनेके ऐस बिन्दुपर उपलब्ध करनेके लिए जहासे वह फिर खोया न जाये।

क्या ऐसा है कि समूची जीवन प्रक्रिया अलग चलती रहती ह और रचना प्रक्रियाका यह घनीभूत क्षण अकस्मात कभी रहस्यमय ढगमे अकारण आ जाता है। शायद नही। कितने ही क्षण ह, कितनी स्थितिया है जो प्रत्यक्षत असम्बद्ध लगती ह पर कुल मिलाकर हमारे चेतन या अद्धचेतन मनमे लहरपर लहर इस एक बिन्दुको उभारती रहती ह। (क्या इसीलिए जैसा मने प्रारम्भमे कहा, किसी एक क्षणको याद करनेके बजाय मरा मन जाने कहा-कहा भटक जाता ह।) जब समूची जीवन प्रक्रिया किसी-न किसी रूपमे रचनाके क्षणमे सम्बद्ध होती ह तो वे लोग जो अक्सर आराप लगाते ह कि अमुक कविता है तो ममस्पर्शी लेकिन जीवनसे दूर ह, वे कविताके बारेम क्या और कितना

जानते ह यह कहना कठिन है। जो खरा काव्य ▮ उसकी रचना प्रक्रियाम, कितने ही अप्रत्यक्ष रूपमे हो, किन्तु जीवन प्रक्रिया अनिवार्यत उलझी रहती हैं।

कितनी विभिन्न स्थितियोंमें-से, हम इस जीवनको उपलब्ध करते ह। अधिकतर तो यह लगता है कि हम जी नही रहे है, जिये जा रहे हैं। कभी उस नीद डूबी यात्री की तरह खुद चलते हुए भी अहसास स्थिरताका होता है और लगता यह है कि हम ठहरे हैं पर बाकी सब हमम-स गुजरता जा रहा है। कभी खुद पुलियाके पास चुपचाप खडे रहते है पर अहसास यह होता है कि बेशुमार भीडमें-से हम हरेकमें-से आ रहे हैं जा रहे हैं। कभी अपनेम 'सब'-का, 'प्रत्येक'का साक्षात्कार करना और कभी 'सब' म, 'प्रत्येक' म, अपना। ये सब जाने कितनी स्थितिया ह जो रचनाके क्षणोमें सार्थक होती है। वह एक बिन्दु है जिसमे से सब ससरण करता है, पुन रचे जानेके लिए।

और यह प्रक्रिया केवल कुछ चुने हुए अत्यन्त सुविधापूर्ण क्षणाम ही नही घटित होती। रोजमर्राकी जिन्दगीके तथाकथित अत्यन्त गद्यात्मक नीरस काम, दफ्तर, बाजार, सौदा सुलुफ, हारी-बीमारी, रोजगारके बीच भी रचनाकारका मन अनजाने चुपचाप काव्य-सृजनकी भूमिका प्रस्तुत करता रह सकता ह। इसीलिए जाने कितने रूपामें कितने प्रकारसे जीवन तथा बाह्य परिवेश काव्य-कृतिमे समाविष्ट होता चलता ह। यही कारण ह कि खरी काव्य कृतिका मुख्य गुण है सजीवता, अनायास सजीवता। और यही कारण ह कि जब सहज रचना प्रक्रियामें व्यवधान उत्पन्न कर प्रयासपूर्वक जीवन या जीवनकी ऐसी व्याख्याएँ काव्यपर जबरदस्ती आरोपित करनेकी चेष्टा की जाती है जो रचनाके अपने आतरिक सृजन विकाससे उद्भूत नही हैं, तो वे निश्चित रूपसे काव्यको निर्जीव ही बनाती ह। जब भी काव्यम 'दृष्टि' उभरी है तो तभी जब रचनाकारके मनमें दोनो ही स्तर स्वत सजीव और सक्रिय रहे ह, दोनो ही एक-दूसरेको अनुप्राणित भी करते चले ह और अनुशासित भी, कभी

विरोधी स्थितियाम कभी समानान्तर स्थितियाम, कभी पूरक स्थितियाम।

निःसन्देह रचनाकारके मनकी यह स्थिति काफी जटिल होती है। इस जटिल स्थितिको समझने या जी सकनेमें जो असमर्थ होते हैं वे अक्सर इसे सरल करनेकी कोशिश करते हैं – इनमेंसे किसी एक स्तरको काटकर। सरलताकी ओर अकाव्यात्मक पलायनका एक रूप यह होता है जब रचना प्रक्रियाकी अनिवार्य प्रकृतिगत मांगोंकी उपेक्षा कर जीवनकी किसी एक संकीर्ण परिधिको ही सब कुछ सौंप दिया जाता है और कविकर्म केवल निर्देशित विषय (शास्त्र-द्वारा, धर्म द्वारा, राजसत्ता-द्वारा) नीति, आदेश, योजना, फतवाके पद्यान्तरण तक सीमित हो जाता है। ऐसे काव्यका खोखलापन जाहिर होते देर नहीं लगती। सरलताकी ओर दूसरा अकाव्यात्मक पलायन है उनका जो समूची जीवन प्रक्रिया और यथार्थकी कठोर भूमिसे असम्पृक्त रहना चाहते हैं अतः वे रचना प्रक्रियाको जीवन प्रक्रियासे नितान्त पृथक, कभी कभी अनिवार्यतः विरोधी मान लेते हैं। वे कहते हैं कि उनकी काव्यप्रेरणा किसी दिव्य अशरीरी लोकसे आती है, उनका रचनाकार 'द्रष्टा' और स्वयम्भू है अतः साधारण प्राणीसे कुछ ज्यादा ऊँचा है – और फिर यह तर्क यहाँतक ले जाता है कि न केवल रचनाकारके 'प्राण', वरन उसकी वेश भूषा, बातचीत, तौर तरीका, सब साधारणसे कुछ पृथक होनी अनिवार्य हो जाती है – लोकोत्तर – क्योंकि उसकी मृदु मृदु प्रतिभा तो इस लोकमें भटकी हुई अश्रुमय कोमल परदेशिनी है।

काव्य सृजनकी वास्तविक भूमिकी जटिलतासे ये दोनों मार्ग मुक्ति दिलाते हैं अवश्य, यह बात दूसरी है कि इन दोनों मार्गोंपर चलकर वह न मिले जो सम्पूर्णतः कविता है या जो प्रौढ़ कविता है। कभी-कभी रोचक लगती है उनकी नियति जो कभी इस मार्गपर भागते हैं कभी उस

मार्गपर और ज्यो-ज्यो आगे जाते है त्यो-त्यो मूलत कविता से दूर होते जाते है।

इनसे बहुत अलग है वह भावस्थिति जो अपनेको रचनाकार मानते हुए भी अपनेको सामान्यसे पृथक नही मानती, रोजमर्राकी जिन्दगीमे अपनेको परदर्शिनी नही मानती। ऐसे लोग असाधारणताका बाना नही ओढते, सहज रूपमे जीवनको सम्पूर्ण परिवेशमे जीनेके हामी है, व्यक्तित्वको हारते नही, जगतका अस्वीकारते नही, और अपने हर अकेलेपनमे अभिव्यक्तिके द्वारा अपनेका 'सब'से 'प्रत्येक'-से जोडनेकी चेष्टा करते हैं। राह उनकी अँधेरी होगी ही, पर इससे क्या, वे रचते भी तो उसीम-से है।

काव्य सृजनकी इस जटिल भूमिपर, इस तमाम प्रक्रियामे से एक सजीव रचना उभरती आती है, मनके चेतन और अर्द्धचेतन स्तरामे-से रूपायित होती हुई। कभी, धीरे धीरे विभिन्न स्थितियामे से गुजरते हुए, एक एक कण बनते हुए, रचनाकार अपने चेतन अशस उस महसूस करता है। कभी-कभी रचनाकी प्रारम्भिक स्थितियोंसे रचनाकारका चेतन मन स्वत अनवगत रहता है। जानता है तब, जब अकस्मात् उसका विस्फोट होता है। घण्टे भरमे, दो घण्टे-भरम मोहाविष्ट सा रचनाकार उसे प्रस्तुत कर देता है।

एक सप्राण सजीव रचना प्रस्तुत कर देनेके बाद फिर रचनाकारका कार्य समाप्त हो जाता है।

उसके बाद फिर प्रक्रियाका दूसरा मोड प्रारम्भ हो जाता है जिसम रचना सीधे पाठकके समक्ष हाती है और रचनाकार बीचसे हट जाता है। अब नये प्रश्न उठने लगते है रचनामे-से पाठक क्या पाता है? क्या कविने जो अनुभव किया है उसका सवेदन पाठकको होता है? या वह अनुभव फिर नये सिरेसे पाठकके मनमे पुन रचित होता है? या पाठकके मनमे कवितासे जो जागता है वह कोई तीसरा ही अनुभव है?

बहुत महत्त्वपूर्ण हैं ये प्रश्न — लेकिन इनसे कथाका दूसरा ही चरण प्रारम्भ होता है, जिसमें रचनाकार स्वयं तटस्थ जिज्ञासु मात्र रह जाता है क्योंकि यह अब स्वरचित कृति और पाठकके बीचमें हट गया है



प्रमथ्यु गाथा

प्रमथ्यु एक यूनानी पुराण पुरुष है जो सृष्टिके आरम्भमें पहली बार स्वर्गसे, ज्युपितरके महलोंसे मनुष्योंके त्राणके लिए अग्नि हर लाया था। दण्डस्वरूप ज्युपितरने उसे एक शिलासे बँधवा दिया था और एक गिद्ध निरन्तर उसके हृदयपिण्डको खाते रहनेके लिए तैनात कर दिया गया था। प्रस्तुत रचनामें प्रमथ्यु, ज्युपितर, अग्नि, गिद्ध सभी अपना अपना वक्तव्य प्रस्तुत करते हैं।

प्रमथ्यु गाथा

प्रमथ्यु

जकड़े हुए हैं ये मेरे हाथ
लौह शृंखलाओं से
जड़ी हुई जो कीलों से
इस आदिम चट्टान से,

टूटी हुई है पसलियां
और मन का घाव
अन्दर का सारा दर्द
नंगा अनावृत है

द्युपितर की आज्ञा से
नरभक्षी बूढ़ा गृद्ध
मेरे कन्धों पर बैठ
दिन-भर नोचा करता है मेरा हृदयपिण्ड
और मैं बेबस हूँ
वन्दी हूँ।

मैंने, क्योंकि मैंने ही
प्रथम बार साहस किया
द्युपितर के महलों से अग्नि छीन लाने का

अन्धी घाटी मे भयभीत भेड के समान
पृथ्वी यह

अँधियारे म थी सहमी खडी
मैने, हाँ मैने ही प्रथम बार साहस किया

घुपितर

साहस नही था,
मने जो नकशा बनाया था
मानव अस्तित्व का —
उसम थी दासता,
विनय थी, कायरता थी
भय था, आतक था
अँधेरा था
यह जो
इस व्यक्ति ने
अँधेरे का देकर चुनौती
दुस्साहस किया
यह मेरी सत्ता का प्रथम अनादर था

मैने इसे दण्ड दिया
वर्जित थी ज्योति
और गर्हित था स्वातन्त्र्य
साहस उत्पन्न ही नही था किया मैने तब
इसकी यह लायी हुई आग
अगर साहस बन फैल गयी होती मनुष्या म
फिर व उठाते सिर
फिर फिर वे उठाते सिर

मूरख नही है जी !
हम क्यो उठाते सिर
हम क्यो ये सब साहस करते व्यथ
अग्नि जिसे लाना था ले आया !

अग्नि नही थी जब
तब हमने नही कहा
कि जाओ अग्नि लाओ तुम
और अग्नि जब आयी
हमने नही कहा कि अग्नि नही लेगे हम

यह जो हम अब भी खडे है
प्रमथ्यु के आस-पास —
इसलिए नही कि हम कुछ
उसके अनुगामी है,

हम ह तमाशबीन
देख रहे है कैसे जकडा हुआ है शिलाओ स
कैसे वह कन्धे पर बैठा हुआ गिद्ध
नोच-नोच खाता है उसका हृदयपिण्ड
और रात ढलते-ढलते कैसे
सारा घाव फिर से पुर जाता है
ताकि गिद्ध फिर नोचे

यह है करिश्मा और
हम सब करिश्मो के प्यासे है !
चाहता अगर तो हममे-से हर एक व्यक्ति
अपने ही साहस से प्रमथ्यु हो सकता था

लेकिन हम डरते थे,
ज्योति चाहते थे
पर दण्ड भोगने से हम डरते थे ।

हम सब करिश्मा के प्यासे हैं
कोई भी करिश्मा कर दिखलाये
हम खुद क्या लें कोई भी निर्णय
हम खुद क्या भोगें कोई भी दण्ड ?

भक्ति

वे थे सब स्वार्थी
विलासी थे, कायर थे
जिनके महलों में मैं बन्दी थी

मुक्त किया मुझको प्रमथ्यु ने

उसने कहा
तुम हो ज्योति
तुम्हीं जीवन हो

माथे में अपने लगा कर प्रमथ्यु ने
फेंक दिया फिर मुझको इन कायरों के बीच

मुझसे ये
गुमटे ग्राम चूल्हा सुलगायेंगे
संध्या सुलगायेंगे
गाना गायेंगे
और जगह-जगह मौका पाते ही
अपने महलों का आग पर फूकेंगे ।

मुझको क्यो मुक्त किया
मुझको क्यो माथे से लगा कर
फिर फेक दिया इन कायरो के बीच !

प्रमथ्यु

मुझको मालूम नही था कुछ भी
डूबा था सब कुछ अँधियारे मे
अँधियारे मे मै भी डूबा था

अग्नि किसे कहते ह
इसका आभास भी नही था मुझे

गिद्ध यह बैठा है जो मेरे कन्धा पर
ऊपर उडते-उडते पहली बार इसने देखी थी
झलक अग्नि की !

साहस था मेरा
किन्तु ज्युपितर के महलो की गुप्त राह
इसने बतायी मुझे —
गुरजन है !
सच है यह
मेरे कन्धो पर बैठ
नोच-नोच खाता है यह मेरा हृदयपिण्ड
फिर भी मेरा मस्तक नत है
होठो को भीचे निश्शब्द सह रहा हूँ मै
क्योकि यह बूढा गृद्ध गुणी है, ज्ञाता है ।

मस्तक नत है मेरा
इसलिए नही कि हूँ पराजित मै

इसलिए कि जिनके हित अग्नि जीत लाया हूँ
उनमे नही है साहस या संवेदना
जिसमे नही है साहस प्रमथ्यु बनने का
उसको बिना पीडा के मिल जानेवाली अग्नि
साजती नही है
और पशु ही बनाती है।
अग्नि मिलने पर भी
वे सब पशु के पशु है
जिनका नृशस स्वाद आता है
मेरी इस मर्मान्तिक पीडा मे।
देता है जो बूढा गिद्ध
मेरे ही कन्धो पर बैठकर

गृद्ध

कटु मत हो
सुनो वत्स।
शोभा नही देती है कटुता प्रमथ्यु को
सच है यह
मैने ही प्रेरित किया था तुम्हे देव-अग्नि लाने को
क्योकि धरा पर नीचे गहरा अँधियारा था
जीवन भर मैने आकाश मे
निरर्थक चक्कर काटे
ऊँचे पर्वत, उबड-खाबड घाटीवाली
धरती पर कैसे उतरता मै ?
नीचे अँधियारा था
अब मै हूँ बूढा
और भर थके है पंख

जबतक आकाश में विहार करूँ
सिवा तुम्हारे इन सबल पुष्ट कन्धों के और कहाँ रहूँ मैं ?
कटु मत हो !
आहत है मेरा अहम्
मेरे थे पंख और मैंने देखी थी अग्नि
मैं भी ला सकता था
किन्तु इस थोड़े-से साहस के बगैर
मैं अग्नि जीत लाने से वंचित रहा

तुम हो मेरे प्रियजन
मेरा यह आहत अहम्
अगर तुम्हारे मर्मपिण्ड में चुभाता है
अपनी भूल
तो तुम क्या इतना भी नहीं सहोगे मेरे लिए

सुनो वत्स !
मुझको यदि मानते हो गुरुजन
तो बात सुनो
सहने लगो सब कुछ
माथे पर शिकन नहीं लाना कभी
मन में घृणा नहीं लाना कभी
घृणा वह ज़हर है
जो नसों में प्रवाहित
रक्त को दूषित करता है
और वह रक्त
यह गुलाम रक्त
अन्तरात्मा ममता ही तो पीता है !

इसलिए कि जिनके हित अग्नि जीत लाया हूँ
उनम नही ह साहस या सवेदना
जिमम नही है साहस प्रमथ्यु वनने का
उसको विना पीडा के मिल जानेवाली अग्नि
माजती नही है
आर पशु ही वनाती है ।
अग्नि मिलने पर भी
वे सव पशु के पशु ह
जिनको नृशस स्वाद आता है
मेरी इस मर्मान्तिक पीडा म ।
दता ह जो बूढा गिद्ध
मेरे ही कन्धा पर वैठकर

गृद्ध

कटु मत हो
सुनो वत्स ।
शोभा नही दती है कटुता प्रमथ्यु को
सच है यह
मैंने ही प्रेरित किया था तुम्ह देव-अग्नि लाने को
क्योकि धरा पर नीचे गहरा अँधियारा था
जीवन भर मैने आकाश म
निरथक चक्कर काटे
ऊँचे पवत, उबड-खाबड घाटीवाले
धरती पर कैस उतरता मैं ?
नीचे अँधियारा था
अब म हूँ बूढा
आर मेरे थके ह पख

कबतक आकाश मे विहार करूँ
सिवा तुम्हारे इन सबल पुष्ट कन्धो के और कहा बैठूँ मैं ?
कटु मत हो !
आहत है मेरा अहम्
मेरे थे पख और मैंने देखी थी अग्नि
मैं भी ला सकता था
किन्तु एक थोडे-से साहस के बगैर
मैं अग्नि जीत लाने से वंचित रहा

तुम हो मेरे प्रियजन
मेरा यह आहत अहम्
अगर तुम्हारे मांसपिण्ड से बुझाता है
अपनी भूख
तो तुम क्या इतना भी नही सहोगे मेरे लिए

सुनो वत्स !
मुझको यदि मानते हो गुरुजन
तो बात सुनो
सहते चलो सब कुछ
माथे पर शिकन नही लाना कभी
मन मे घृणा नही लाना कभी
घृणा वह जहर है
जो नसो मे प्रवाहित
रक्त को दूषित करता है
और यह रक्त
यह तुम्हारा रक्त
अन्ततोगत्वा मुझको ही तो पीना है !

पियो ।
जी भरकर पियो,

गुरजन हो
मेरी शिराओं में रक्त बह रहा है तुम्हारा ही
जी भर पियो ।

कटु मैं नही हूँ
घृणा किससे करूँगा मैं

ये जो जन हैं, साधारण जन हैं
उनमें से एक एक के अन्दर
मूर्च्छित प्रमथ्यु कही बन्दी है ।
अवसर जिसे मिला नही साहस कर पाने का

कोई तो ऐसा दिन होगा
जब मेरे ये पीडा सिक्त स्वर
उसके मन को बेध मूर्च्छित प्रमथ्यु को जगायेंगे ।
उस दिन
हाँ, उस दिन
अकेला मैं रहूँगा नही
सबके हृदयो में मैं जागूँगा
मैं – प्रमथ्यु
कटु मैं नही हूँ
घृणा किससे करूँगा मैं ?



४

नया रस

प्रभु
इस रस को
इस नये रस को क्या कहते हैं ?

जिसमें शृंगार की आसक्ति नहीं
जिसमें निर्वेद की विरक्ति नहीं
जिसमें बाँहों के
फूलों-जैसे बंधन के
आकुल परिरम्भण की गाढ़ी तन्मयता के क्षण में भी
ध्यान कहीं और चला जाता है
तन पिघले सूरज की
आग पिया करता है
पर मन में कई प्रश्नचिह्न उभर आते हैं

यह सब क्या है ?
क्या है ?
इसके बाद
— और बाद
— और बाद
— और बाद
फिर क्या है ?
चुम्बन आलिंगन का जादू
मन को जैसे ऊपर-ही-ऊपर से छूकर रह जाता है

अन्दर जहरीले अजगर जैसे प्रश्नचिह्न
एक-एक पसली को जकड़-जकड़ लेते है
फिर भी बेकाबू तन
इन पिघले फूलो की रसवन्ती आग बिना
चैन नही पाता है
प्रभु,
इस रस को
इस नये रस को क्या कहते है ?



नवम्बर की दोपहर

अपने हलके-फुलके उड़ते स्पर्शों से मुझको छू जाती है
जार्जेट के पीले पल्ले-सी यह दोपहर नवम्बर की!

आयी गयी ऋतुएँ पर वर्षों से ऐसी दोपहर नहीं आयी
जो क्वाँरेपन के कच्चे छल्ले-सी
इस मन की उँगली पर
कस जाये और फिर कसी ही रहे
नितप्रति बसी ही रहे, आँखों में, बातों में, गीतों में
आलिंगन में घायल फूलों की माला-सी
वक्षों के बीच कसमसी ही रहे

भीगे केशो म उलझे होगे थके पख
सोने के हसा-सी धूप यह नवम्बर की
उस आगन मे भी उतरी होगी
सीपी के ढालो पर केसर की लहरो-सी
गोरे कन्धो पर फिसली होगी बिन आहट
गदराहट बन बन ढली होगी अगो मे

आज इस वेला म
दद ने मुझको
और दोपहर ने तुमको
तनिक और भी पका दिया
शायद यही तिल-तिल कर पकना रह जायेगा
साझ हुए हसा-सी दोपहर पाख फैला
नीले कोहरे की झीला म उड जायेगी
यह है अनजान दूर गावो से आयी हुई
रेल के किनारे की पगडण्डी
कुछ क्षण सँग दौड-दौड
अकस्मात् नीले खेता म मुड जायेगी



फागुन के दिन की एक अनुभूति

फागुन के सूखे दिन
कस्बे के स्टेशन की धूल-भरी राह बड़ी सूनी सी
ट्रन गुजर जाने के बाद
पके खेतों पर खामोशी पहले से और हुई दूनी-सी
आंधी के पत्तों से
अनगिन तोते-जैसे टूट गिरे
लाइन पर, मेडों पर, पुलिया के आस पास
(सब कुछ निस्तब्ध, शान्त मूच्छित सा
अकस्मात्–)
चौकन्नी लोखरिया उछली
औ' तेजी से तार फाँद लाइन कर गयी क्रास

जैसे शीशे में चटखे दरार
सहमा यह मुझको एहसास हुआ –
यह सब है और किसी का
यह पगडण्डी, यह गाँव-खेत, सुग्गों के हरे पंख,
गति, जीवन
सबका सब और किसी का
मेरा है केवल निर्वासन, निर्वासन, निर्वासन



उत्तर नहीं हूँ

उत्तर नहीं हूँ
मैं प्रश्न हूँ तुम्हारा ही ।

नये-नये शब्दों में तुमने
जो पूछा है बार-बार
पर जिस पर सब के मन केवल निरुत्तर हैं
प्रश्न हूँ तुम्हारा ही ।

तुमने गढ़ा है मुझे
किन्तु प्रतिमा की तरह स्थापित नहीं किया
या
फूल की तरह

मुझको वहां नहा दिया
प्रश्न की तरह मुझको रह-रह दोहराया है
नयी नयी स्थितियों में मुझको तराशा है
सहज बनाया है
गहरा बनाया है
प्रश्न की तरह मुझको
अर्पित कर डाला है
सबके प्रति

दान हूँ तुम्हारा मैं
जिसको तुमने अपनी अजलि में बाधा नहीं
दे डाला !

उत्तर नहीं हूँ मैं
प्रश्न हूँ तुम्हारा ही !



जिज्ञासा

मणिशय्या पर जल-बालाओ का प्यार
या सागर का विप मन्थन अपरम्पार
क्या पायेगे
प्रभु,
हम क्या पायगे ?

आखिर आयेगा वह दिन
जिस दिन होठो पर यद्यपि होगे होठ
पर खाई होगी हम दोनो के बीच
जिस दिन बाहो मे यद्यपि होगी बाह
पर मन रस सहसा कोई लेगा खीच

५

जिस दिन यह सारा आकुल प्रणयोन्माद
रह जायेगा केवल पिछला अभ्यास
जिस दिन यद्यपि तन होगा तन में लीन
पर मुरदा होगी मन की सारी प्यास

उस दिन होगा फिर यह सिद्ध
वैयक्तिक सीमा में बद्ध —
जितना झूठा है यह दुख
उतना ही झूठा है सुख
सुख-दुख इन दोनों के पार
क्या पायेंगे
प्रभु
हम क्या पायेंगे ?

वैयक्तिक सीमाएँ तोड़
इतिहासों के संग गति मोड़
जिस दिन हम युग-पथ पर जन-जन के साथ
बढ़ने होंगे फिर दृढ़ पग, उन्नत-माथ
हम सब के होठों पर सामूहिक गीत
गतियों की वल्गा जन-नायक के हाथ
आयेगा ऐसा भी दिन
जब नायक की कोई छोटी-सी भूल
सहसा अभियानों का कर दे पथभ्रष्ट —
युगवाही सपनों पर पड़ जाये धूल
आत्मा में केवल अँधियारा औ' कष्ट,

कूड़े-सा हमको तज कर तट के पास
मन्थर गति से बढ़ जायेगा इतिहास

सामूहिकता भी केवल
साबित होगी जिस दिन छल

अपनी वैयक्तिकता हार
क्या पायेंगे
प्रभु,
हम क्या पायेंगे ?

लेकिन इन दोनों के बीच
मेरे ये तीखे पर एकाकी स्वर
केवल सच्चाई का आश्रय लेकर
गूँजेंगे, या रव में खो जायेंगे
या ये स्वर पहुँचेंगे जन-जन के द्वार

लज्जित माथे पर काँटों का सिंगार
या मंगल वादन, जयध्वनि, बन्दनवार
क्या पायेंगे
प्रभु,
हम क्या पायेंगे ?



सक्रान्ति

सूनी सडको पर ये आवारा पाव
माथे पर टूटे नक्षत्रो की छाव

कब तक
आखिर कब तक ?

चिन्तित माथे पर ये अस्तव्यस्त बाल
उत्तर, पच्छिम, पूरब, दक्खिन-दीवाल

कब तक
आखिर कब तक ?

लडने वाली मुट्ठी जेबो मे बन्द
नया दौर लाने म असफल हर छन्द

कब तक
आखिर कब तक ?



पराजित पीढ़ी का गीत

हम सब के दामन पर दाग
हम सबकी आत्मा में झूठ
हम सबके माथे पर शर्म
हम सबके हाथों में टूटी तलवारों की मूठ।

हम थे सैनिक अपराजेय
पर हम थे बेबस लाचार
यह था कठपुतली का खेल
ऊपर थी कलई, पर लकडी के थे सब हथियार !

हम सबके थे अपने गीत
आखिर तक गाने की शर्त
पर जाने कैसे ऐसे बदले बोल —
हमने गाया कुछ, पर कुछ निकला अर्थ !

तुम क्या जानोगे ओ प्रभु !
उसके मन का कटु विक्षोभ
जिसकी निष्ठा के आगे
गर्हित था छोटे से छोटे समझौते का लोभ !

तुमने कब झेली सक्रान्ति
तुम क्या समझोगे ओ प्रभु !
इन गत्यवरोधो का दद —
कैसे तरणाई म ही
घुट भर जाते है विश्वास
प्राणो की समिधाएँ जम कर हो जाती है सर्द !

फिर भी यदि तुमको मजूर
हमको भटकाओ कुछ और
यदि तुमको फिर भी मजूर
सच्चाई की बाँहो मे हम सब पाये मत ठौर,

तो कम से कम करुणामय
इतना तो दो ही वरदान
दो हमको फिर झूठे लक्ष्य
दो हमको फिर झूठे युद्धों का झूठा मैदान !

तुम क्या जानोगे ओ प्रभु
संघर्षों के ही अभ्यासी ये प्राण
हो जाते कितने बेचैन
छिन जाते हमसे जब शस्त्र, छिन जाते ईमान !

दो हमको फिर झूठे युद्ध
दो हमको फिर झूठे ध्येय
हारेंगे फिर यह है तय
फिर उसको मानेंगे हम प्रभु की हार
अपने को मानेंगे फिर अपराजेय !

हम सबके दामन पर दाग
हम सबकी आत्मा में झूठ
हम सबके माथे पर शर्म
हम सबके हाथों में टूटी तलवारों की मूठ !

हम सब सैनिक अपराजेय !



कौन चरण ?

जिस दिन
अपनी हर आस्था तिनके-सी टूटे
जिस दिन
अपने अन्तरतम के विश्वास सभी निकले झूठे,

उस दिन होगे
वे कौन चरण
जिनमे इस लक्ष्यभ्रष्ट मन को
मिल पायेगी अन्त मे शरण ?

जब हम पर छाये भ्रम दोहरा
जर्जर तन पर कम्पन, हारे मन पर कोहरा
हर एक सूत्र जिसको समझे हम प्रभु का स्वर
कसने पर जिस दिन साबित हो शब्दाडम्बर
हर कदम पडे झूठा
जैसे चौसर का पिटा हुआ मोहरा

उस दिन
होगे वे कौन चरण
जिनमे इस लक्ष्यभ्रष्ट मन को
मिल पायेगी अन्त मे शरण ?

जिसकी लय पर
साधे हमने आत्मा के स्वर
वे अकस्मात् मुड जिस दिन पथ गह ले दूजा
अन्तर में घुटती रह जाये टूटी पूजा
माथे के नीचे रह जाये ठण्डा पत्थर

उस दिन
होगे वे कौन चरण
जिनमे इस लक्ष्यभ्रष्ट मन को
मिल पायेगी अन्त मे शरण ?

सब जलने पर जो शेष रहे कण-भर सोना
काँपती उँगलियों से हमको जिस रोज पड़े वह भी खोना
अपनी साँसें तक भूलें जब अपना परिचय
पाँवों नीचे तक की धरती जिस रोज न दे हमको आश्रय
जब हमें निगलने दौड़े खुद अपने मन का कोना-कोना।

उस दिन
होंगे वे कौन चरण
जिनमें इस लक्ष्यभ्रष्ट मन को
मिल पायेगी अन्त में शरण ?

"उस दिन
मैं दूँगा तुम्हें शरण
मैं जनपथ हूँ
मैं प्रभुपथ हूँ, मैं हूँ जीवन
जिस क्षितिज रेख पर पहुँच व्यक्ति की राह झूठी पड़ जाती
मैं उस सीमा के बाद पुनः उठने वाला नूतन अथ हूँ
मैं प्रभुपथ हूँ
जिसमें हर अन्तर्द्वन्द्व, विरोध,
विषमता का
हो जाता है अन्त में शमन !"

"प्रभु !
पर तुम तो केवल पथ हो
चलना तो हमको ही होगा
हिम की ठण्डी चट्टानों पर

चलना तो हमको ही होगा
सब टूटे और अधूरे हम
इस जनपथ को
इस प्रभुपथ को
कर पायेंगे किस तरह ग्रहण ?

हमको कुछ ऐसा लगता प्रभु
ऐसे कोई भी नही चरण
जिसमे मिल पाये हम शरण
तुम भी केवल निष्क्रिय पथ हो

चलना तो हमको ही होगा
चलने मे ही हम टूटो और अधूरो का
शायद कुछ होगा नया गठन
आश्रय देंगे हमको अपने
जर्जर पर अपराजेय चरण

आखिर होगे वे यही चरण
जिसमे इस लक्ष्यभ्रष्ट मन को
मिल पायेगी अन्त मे शरण !"



इनका अर्थ

ये शामे, ये सब की सब शामे
जिनमे मैंने घबरा कर तुमको याद किया
जिनमे प्यासी सीपी-सी भटका विकल हिया
जाने किस आने वाले की प्रत्याशा मे
ये शामे
इनका क्या कोई भी
अर्थ नही ?

ये लमहे, ये सारे सूनेपन के लमहे
जब मैंने अपनी परछाही से बातें की
दुख के मारी टूटी वीणाएँ फेंकी
जिनमें अब कोई भी स्वर न रहे
ये लमहे,
इनका क्या कोई भी
अर्थ नही ?

ये घडिया—ये बेहद भारी-भारी घडियाँ
जब मुझको फिर यह एहसास हुआ
अर्पित होने के अतिरिक्त और राह नही
जब मैने झुक कर फिर माथे से पन्थ छुआ
फिर बीनी गत पग-नूपुरसे बिखरी मणियाँ
ये घडियाँ
इनका क्या कोई भी
अर्थ नही ?

ये घडिया, ये शाम, ये लमहे
जो मन पर कोहरे से जमे रहे
निर्मित होनेके क्रम में
क्या
इनका कोई अर्थ नही ?

जाने क्या कोई मुझमें कहता
मन में कुछ ऐसा भी है रहता
जिसको छू लेने वाली कोई भी पीडा
जीवन में फिर जाती व्यर्थ नही !

अर्पित है पूजा के फूलों-सा जिसका मन
अनजाने दुख कर जाता उसका परिमार्जन
अपने से बाहर की व्यापक सच्चाई को
नतमस्तक होकर वह कर लेता सहज ग्रहण

ये सब बन जाते पूजागीता की कड़ियाँ
यह पीड़ा, यह कुण्ठा, ये शाम, ये घड़िया
इनमें-से क्या है
जिसका कोई अर्थ नही !
कुछ भी तो व्यर्थ नही !

■

गैरिक वाणी

मेरी वाणी
गैरिक वसना
भूल गयी गोरे अंगों का
फूलों के वसनों में बसना
गैरिक वसना
मेरी वाणी ।

अब विरागिनी
मेरा निज दुख, मेरा निज सुख
दोनों से तटस्थ रागिनी
अब विरागिनी
मेरी वाणी ।

चन्दन शीतल,
पीडा से परिप्लावित स्वर में
उभरा एक नवीन धरातल
चन्दन-शीतल
मेरी वाणी

भटके हुए व्यक्ति का संशय
इतिहासों का अन्धा निश्चय
ये दोनों जिसमें पा आश्रय
बन जायेंगे साधक समतल

ऐसे किसी अनागत पथ का
पावन माध्यम-भर है
मेरी आकुल प्रतिभा
अर्पित रसना
गैरिक वसना
मेरी वाणी

जल-सी निर्मल
मणि-सी उज्ज्वल
नवल, स्नात
हिम धवल
ऋजु
तरल
मेरी वाणी ।



केवल तन का रिश्ता

अब यह जूही के फूलो का तन नही रहा

हिरन की छलागो-जैसा हलका फुर्तीला
लहरो म बल खाती किरनो-सा लचकीला
अब यह जूही के फूलो का तन नही रहा
पर जाने क्यो
यह पहले से अधिक सुदर है
जाने क्यो इसमे पहले से अधिक जादू है

अब इसमे ममता है
अब इसका रोम रोम
तृष्णाओ, झगडो, समझौतो, मनुहारो की
जाने कितनी मीठी स्मृतियो मे बसा हुआ

७

कितनी बार चिन्ता से जलते हुए माथे को
इस तन से आश्रय मिला
कोमल हमदर्दी मिली
इस तन ने कितनी बार
प्राजल, पवित्र स्नेह
मेरे हारे आकुल मन पर बिखेरा है
अब इसमें पहले से
कही अधिक ममता है
रस है
अपनापन है !

तन का –
केवल तन का रिश्ता भी
मासलता से कितना ऊपर उठ जाता है

अब यह जूही के फूला-सा तन नही रहा
पर इसमे पहले से कही अधिक जादू है !



मेघ – दुपहरी

ढल रही है
मेघ की चूनर लपेटे दोपहर
एक उचटा हुआ-सा
सुनसान सन्नाटा अकेला जग रहा है
मेघ धूमिल दिशाओं की बाँह में।

न जाने क्यों
आज यह अपना
बहुत परिचित बहुत प्यारा शहर
अजनबी, अनजान, अन्यमनस्क-सा लग रहा है
बादलों की नील-जमुनी छाँह में।

वही मैं हूँ
वही मेरा वीतरागी मन
नहीं अब जिसमें किसी से
खास कोई नेह, कोई लगन
किन्तु फिर क्यों चित उचटता काम से ?
क्यों उदासी और बढ़ती शाम से ?

छू गयी मुझको
न जाने कौन बिसरी बात
भूला क्षण
जिस तरह छू जाय नागिन
फूल को खिलते पहर
ढल रही है
मेघ की चूनर लपेटे दोपहर।



प्लेटफॉर्म

बहुत उदास-सा पीले गुलाब-सा चेहरा
हथेलियों में टिका हुआ गुमसुम

सुनो इतनी अजीब-सी किस्मत
ले के पैदा हुए थे क्यों हम तुम ?



इतने दिन वाद

एक अनजवी को देख
आगन मे नहाती हुई गौरैया भागी
और झुरमुट मे छिपकर व्याकुलता से चहकी,
मुझको पहचान आज
आज इतने दिना वाद देख
थाले की जूही कुछ डोली, उदासी से महकी,

सिफ एक तुम थी
जो हिली नही, डुली नही
जीने पर खडी रही
यादो म डूबी-सी, खयालो मे वहकी।



कस्बे की शाम

झुरमुट म दुपहरिया कुम्हलायी
खेता पर अन्हियारी घिर आयी
पश्चिम की सुनहरिया धुँधरायी

टीलों पर, तालों पर,
इक्का-दुक्के अपने घर जाने वालों पर
धीरे धीरे उतरी शाम ।

आँचल से छू तुलसी की थाली
दीदी ने घर की ढिबरी वाली
जमुहाई ले-लेकर उजियाली,

जा बैठी ताखों में,
घर-भर के बच्चों की आँखों में
धीरे-धीरे उतरी शाम !

इस अधकच्चे-से घर के आँगन
में जाने क्यों इतना आश्वासन
पाता है यह मेरा टूटा मन

लगता है इन पिछले वर्षों में
सच्चे-झूठे, मीठे-कड़वे संघर्षों में
इस घर की छाया थी छूट गयी अनजाने
जो अब झुक कर मेरे सिरहाने —
कहती है
"भटको बेबात कहीं !
लौटोगे अपनी हर यात्रा के बाद यहीं !"

धीरे-धीरे उतरी शाम !



धूल भरी आँधी का गीत

ओ रे
धूल भरे पवन झकोरे।

तेरे हाथों बिल्कुल बेबस हूँ मैं
जैसे चाहे तू ने हरदम खींचे डोरे।

आज गया तू पिछली यादे झकझोर—
पहला-पहला घायल मन, वय कैशोर
ऐसी थी, बिलकुल ऐसी ही थी शाम
सूने चौराहो पर आँधी का शोर

आँधी सी ही थी जो निकल गयी
शेष रहे उखडे बिरवे, टूटी डार
उस दिन जो बहका तो आज तक
न पहुँच सका मैं अपने ही घर के द्वार
झूठे आलिंगन से, झूठे आलिंगन तक
यूँ मैं भटका कितनी बार !

अब तो पग जर्जर, राहे नामालूम
आ मेरे बालो को बिखरा कर चूम
मुझ पर कर टूटे पत्तो की बौछार
कनकन से भर मेरी पलक मासूम

जाने क्या है तुझमे जिसके आगे फीके
लगते है अगो के जादू गोरे

पतझड की सझा को
पाहुन बन कर आ,
जो सूखे मुँह, धूल-भरे पवन झकोरे !
ओऽऽऽरे !

■

आँगन

बरसों के बाद उसी सूने-से आँगन में
जाकर चुपचाप खड़े होना
रिसती-सी यादों से पिरा पिरा उठना
मन का कोना-कोना

कोने से फिर उन्हीं सिसकियों का उठना
फिर आकर बाँहों में खो जाना
अकस्मात् मण्डप के गीतों की लहरी
फिर गहरा सन्नाटा हो जाना
दो गाढ़ी मेंहदी वाले हाथों का जुड़ना,
कँपना, बेबस हो गिर जाना

रिसती-सी यादों से पिरा पिरा उठना
मन का कोना-कोना
बरसों के बाद उसी सूने-से आँगन में
जाकर चुपचाप खड़े होना !



अवशिष्ट

दुख आया
घुट-घुट कर
मन-मन में खोज गया

सुख आया
लुट-लुट कर
कन-कन में छीज गया

क्या केवल
इतनी पूँजी के बल
मैंने जीवन को ललकारा था

वह मैं नही था, शायद वह
कोई और था
उसने तो प्यार किया, रीत गया, टूट गया
पीछे मैं छूट गया



उपलब्धि

मैं क्या जिया ?
मुझको जीवन ने जिया —
बूँद-बूँद कर पिया, मुझको
पीकर पथ पर खाली प्याले-सा छोड़ दिया

मैं क्या जला ?
मुझको अग्नि ने छला —
मैं कब पूरा गला, मुझको
थोड़ी सी आँच दिखा दुर्बल मोमबत्ती-सा मोड़ दिया

देखो मुझे
हाय मैं हूँ वह सूर्य
जिसे भरी दोपहर में
अँधियारे ने तोड़ दिया ।



स्वयम् को दुहरायेगा ?

प्यार यह क्या अब कभी भी स्वयम् को दुहरायेगा ?
नही ! शायद नही

होठ पर अब होठ जब भी आयेगा
आँसुओ का वही खारा स्वाद फिर-फिर पायेगा

हाथ मे जब हाथ कोई आयेगा
उष्ण ममता नही केवल एक खालीपन उसे छू जायेगा

बाह मे जब जिस्म कोई आयेगा
बीच मे तुमको सिमकता पायेगा

प्यार यह क्या अब कभी भी स्वयम् को दुहरायेगा
नही ! शायद नही



साबुत आइने

इस डगर पर मोह सारे तोड
ले चुका कितने अपरिचित मोड

पर मुझे लगता रहा हर वार
कर रहा हूँ आइना को पार

दपणो मे चल रहा हूँ मैं
चौखटो को छल रहा हूँ मैं

सामने लेकिन मिली हर वार
फिर वही दपण मढी दीवार

फिर वही झूठे झरोखे द्वार
वही मगल चिह्न वन्दनवार

किन्तु अकित भीत पर,वस रग से

× × ×

अनगिनत प्रतिबिम्ब हँसते व्यग से

फिर वही हारे कदम की होड
फिर वही झूठे अपरिचित मोड

लौट कर फिर लौटकर आना वही
किन्तु इससे छूट भी पाना नहीं

टूट सकता, टूट सकता काश
यह अजय-सा दर्पणों का पाश

दर्द की यह गाँठ कोई खोलता
दर्पणों के पार कुछ तो बोलता

यह निरर्थकता सही जाती नहीं
लौट कर, फिर लौट कर आना वही

राह में कोई न रच पाऊँगा
अन्त में मैं क्या यही बच जाऊँगा

बिम्ब कुछ आइनों में भटका हुआ
चौखटों के फ्रेम पर लटका हुआ



रात अँधियारी। हवा तेज़

दीख नही पड़ते है पेड़,
मगर डालो से ध्वनियो के
अगणित झरने झरते झर झर
तेज और मन्द
हर झकोरे के सग
हवा चलती है और ठहर जाती है।

सन्नाटा
गूँगे के अनबोले वाक्य-सा —
जाग्रत है यह मेरा मन
पर निरर्थक है।

९

ट्रेन ने सीटी दी
दूर कही लोग अभी जीवित है
चलते हैं, यात्राएँ करते है, मजिल है उनकी !

याद पडता है कभी
बहुत सुबह पौ फटने के पहले
मैंने भी एक यात्रा की थी ।
कच्ची पगडण्डी पर
दोना ओर सरपत के झाडो मे
इसी तरह,
तेज हवा चलती थी और ठहर जाती थी

सीटी फिर बोली
सुनो ! मेरे मन हारो मत !
दूर कही लोग अभी जीवित है,
यात्राएँ करते है, मजिल है उनकी



आस्था

रात
पर मैं जी रहा हूँ निडर
जैसे कमल
जैसे पथ
जैसे सूर्य

क्योंकि
कल भी हम खिलेंगे
हम चलेंगे
हम उगेंगे

और
वे सब साथ होंगे
आज जिनको रात ने भटका दिया है।



निर्माण-योजना

[कविताश्री मिनिस्ट्री-द्वारा प्रस्तुत]

बाँध

साधो !
नदी यह घृणा की है
काली चट्टानों के

सीने से निकली है
अन्धी जहरीली गुफाओं से
उबली है !

इसको छूते ही
हरे वृक्ष सड जायेंगे
नदी यह घृणा की है

लेकिन नही है निरथक यह
बँधने से इसको भी अर्थ मिल जाता है।
इसकी ही लहरो मे
बिजली के शक्तिवान घोडे हैं साये हुए।
जोतो उन्ह खेतो मे, हलो मे—
भेजो उन्ह नगरो म, कला मे—

बदलो घृणा को उजियाले म
ताकत मे,
नये-नये रूपा म साधो—
बाँधो—
नदी यह घृणा की है।

यातायात

बिना किसी बाधा के
नित नयी दिशाओ म
जाने की
सुविधा दो

बिना किसी बाधा के
श्रम के पसीने से
सिंची हुई फसलो को
खेतो से आँतो तक जाने की
सुविधा दो

बिना किसी बन्धन के
हर चलते राही को
यात्रा मे
अकसर थक जाने पर
मनचाहे नये गीत गाने की
सुविधा दो

कभी-कभी अजब-सी रहस्यमय पुकारो पर
मन को अपरिचित नक्षत्रो की राहो मे
जाकर खो जाने की सुविधा दो !

कृषि

ये फसले काटो
पिछले जमाने मे
बीज जो बोये विषमता के
आज वही साँपो की खेती उग आयी है !

धरती को फिर से सँवारो
क्यारी मे बीज नये डालो
पसीने के, आसू के
प्यार के, हमदर्दी के

गुलाम बनानेवाले

और भी पहले वे कई बार आये हैं

एक बार
जब उनके हाथों में भाले थे
घोड़ों की टापों से खैबर की चट्टानें काँपी थीं

एक बार
जब भालों के बजाय
उनके हाथों में तिजारती परवाने थे
बगल में संगीनें थीं

आये हैं जिनके हाथों में है
कैमरे,
पौण्डो
ट्रान्जिस्टर पासपोर्ट,
रंग बिरंगी फिल्म

आये हैं जिनके पास
रंग बिरंगे पोस्टर
[जिनमें वे हुक्म के मुताबिक बदल जाते हैं]
दोस्ती आते वाले
[दूर किसी नगरी में छपे हुए]
पैम्फ्लेट,
रोटी और पैम्फ्लेट के ढेरों में ढँक-ढँक कर आयी हैं
दूर किसी नगरी में ढली हुई जंजीरें ।

ढंग है नया
लेकिन बात वह पुरानी है
घोड़ों पर रख कर, या थैली में भर कर,
या रोटी से ढँक कर, या फ़िल्मों में रंग कर
वे जंजीरें, केवल जंजीरें ही लाये हैं

और भी पहले वे कई बार आये हैं ।



एक वाक्य

चेक बुक हो पीली या लाल,
दाम सिक्के हो या शोहरत–
कह दो उनसे
जो खरीदने आये हो तुम्ह
हर भूखा आदमी बिकाऊ नही होता है ।



बाणभट्ट

मिथ्या था जामुन के कुजो मे आच्छादित
शोण का निचाट कूल
मिथ्या था फागुन मे गुच्छो-गुच्छा फूला
इगुरी अशोक फूल

मिथ्या था, स्मृति के अन्तरिक्ष मे लुकता-छिपता हुआ
भट्टिनी का म्लान मुख
मिथ्या था, अपने को किसी महाराग को समर्पित कर
डूब-डूब जाने का अतीन्द्रिय सुख

सत्य है एक मणिजटित दुपट्टा, एक
मुद्रा-मजूषा, एक पालकी !
सत्य है आत्मा पर थोपी हुई सीमाएँ
सोने के जाल की !
सत्य है कुटज्ञो, वधिको, नगरसेठो, वेश्याओ के आगे
बिके हुए शब्दो की यह क्रीडा
सत्य है राजा हर्षवधन के हाथो से मिला हुआ
पान का सुगन्धित एक लघु बीडा

[चाहे वह जूठा हो,
पर उस पर लगा हुआ वकदार सोना था !
हाय बाणभट्ट ! हाय !
तुमको भी, तुमको भी, आखिर यही होना था !]



बृहन्नला

आज से सौ बरस बाद
मेरी रचनाएँ पढ़ कर तुम यह जानोगे
इस संकटकाल में तो अर्जुन एक मैं ही था
अन्यायी हृदयों में सालती टंकार थी जिसके गाण्डीव की।
मैं ही दृष्टिहीनों की दुनिया में
आँखें खोले देखता रहा था यथार्थ को।

किंतु यदि वर्षों बाद मेरी रचनाएँ पढ़ने की जगह
मुझको आज देखो तुम —
तो कैसा लगेगा तुम्हें
मुझको यह जानने का कुतूहल है ।

युद्धक्षेत्र, कर्मक्षेत्र में मुझको ढूँढ़ोगे व्यर्थ तुम
आज तो मिलूँगा मैं तुमको पराये अन्त पुर में
चाटुकार विद्वानों मूर्खा महिषियो
अशिक्षित विदूषकों से घिरा हुआ

मैं जो हूँ नृपति विराट् का विश्वस्त दास
नृत्य, गीत, कविता, कलाओं का ज्ञाता,
किन्तु हरदम भयाक्रान्त —
मेरा अज्ञातवास खुल न जाय
छिन न जाय मेरी आजीविका इसी भय से
पीछे सभी को धोखा देकर
सामने सभी के झूठी कसमें खाता हुआ ।

कानों तक प्रत्यंचा खींचने के लिए ख्यात
मेरी भुजाएँ ये
मिलेंगी हर छोटे से छोटे दरबारी के सामने
प्रणाम से झुकी हुई,
पाओगे तुम मेरा ओजस्वी सैनिक तन
कुत्सित नपुंसक मुद्राओं में ढला हुआ,
मेरा विख्यात धनुष
तुमको मिलेगा किसी निर्जन तरु-शाखा पर
मुरदा चिमगादड़-सा टँगा हुआ ।

बृहन्नला

आज से सौ बरस बाद
मेरी रचनाएँ पढ़ कर तुम यह जानोगे
इस सकटकाल म तो अजुन एक मैं ही था
अन्यायी हृदया म सालती टकार थी जिसके गाण्डीव की !
म ही दृष्टिहीनो की दुनिया म
आखे खोल दखता रहा था यथाथ को ।

किंतु यदि वर्षो बाद मेरी रचनाएँ पढने की जगह
मुझको आज देखो तुम –
तो कैसा लगेगा तुम्हे
मुझको यह जानने का कुतूहल है ।

युद्धक्षेत्र, कर्मक्षेत्र म मुझको ढूँढोगे व्यर्थ तुम
आज तो मिलूँगा मैं तुमको पराये अन्त पुर मे
चाटुकार विद्वानो मूर्खा महिषियो
अशिक्षित विदूषको से घिरा हुआ

मै जो हूँ नृपति विराट का विश्वस्त दास
नृत्य, गीत, कविता, कलाओ का ज्ञाता,
किन्तु हरदम भयाक्रान्त –
मेरा अज्ञातवास खुल न जाय
छिन न जाय मेरी आजीविका इसी भय से
पीछे सभी को धोखा देकर
सामने सभी के झूठी कसमे खाता हुआ ।

कानो तक प्रत्यचा खीचने के लिए ख्यात
मेरी भुजाएँ ये
मिलगी हर छोटे से छोटे दरबारी के सामने
प्रणाम से झुकी हुई,
पाओगे तुम मेरा ओजस्वी सैनिक तन
कुत्सित नपुसक मुद्राओ मे ढला हुआ,
मेरा विख्यात धनुष
तुमको मिलेगा किसी निर्जन तरु-शाखा पर
मुरदा चिमगादड-सा टँगा हुआ ।

अन्यायी दुर्योधन जब हमला बोला था विराट नगरी पर
मैंने भी अपना प्रदर्शित किया था शौर्य ।

कैसा लगेगा तुम्हें
जब तुम यह जानोगे
कि यह तो लिखाया था मैंने ही
सुबह-शाम जा जा कर
दुःख की गाथा गा कर
पाँवों पड़-पड़ बूढ़े व्यास के ।

असल में हुआ यह था
मेरे चारों भाई जूझते अकेले रहे
मैं तो किनारे खड़ा हर आने वाले से
घबरा कर कहता था – "इधर मत,
इधर मत,इधर मत, आना जी तुम, इधर हम तटस्थ हैं !"

कैसा लगेगा तुम्हें
जब तुम यह जानोगे
कि मैं तो गया था वहाँ
लड़नेके लिए नहीं –
रक्त-सने, बेदम, दम तोड़ते शवों के
गहने कपड़े लूटने के लिए ।

कैसा लगेगा तुम्हें
जब तुम यह जानोगे
कि दूसरे जब जूझ रहे थे नवयुग लाने को
मैंने सिर्फ उत्तरा की गुड़िया सजायी थी ।



टूटा पहिया

मै
रथ का टूटा हुआ पहिया हूँ
लेकिन मुझे फेंको मत।

क्या जाने कब
इस दुरूह चक्रव्यूह मे
अक्षौहिणी सेनाओ को चुनौती देता हुआ
कोई दुस्साहसी अभिमन्यु आकर घिर जाय।

[illegible]
बड़े-बड़े महारथी
अकेली निहत्थी आवाज को
अपने ब्रह्मास्त्रों से कुचल देना चाहें
तब मैं
रथ का टूटा हुआ पहिया
उसके हाथों में
ब्रह्मास्त्रों से लोहा ले सकता हूँ !
मैं रथ का टूटा हुआ पहिया हूँ

लेकिन मुझे फेंको मत
इतिहासों की सामूहिक गति
सहसा झूठी पड़ जाने पर
क्या जाने
सच्चाई टूटे हुए पहियों का आश्रय ले !



एक अवतार में

सुनते है तुम किसी अवतार मे कछुए थे

अपनी इस वज्रोपम पीठ पर
तुमने यह धरती टिकायी थी —
    [लेकिन उपयोग क्या किया था
      मुक़ामल मर्मस्थल का ?

[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible] —
[illegible] ?]

याद करो प्रभु,
जब तुमने पीठ पर
धरती उठायी थी —
[illegible] बोझ
अपने पर [illegible] भी
ताकत कहाँ पायी थी ?



दान प्रभु के नाम ।

राह पर बिछाये है
मैने जो –
तीखे नुकीले – ये
पूजा के फूल नही
शीशे के टुकडे हैं –

पावों में गड़ेंगे जब
सामने पड़ेंगे जब

तुमको दिखायेंगे
कुछ टूटी शकलें
प्रभुताई, मसीहाई
की भाड़ी नक्लें

देख जिन्हें गुस्से से उबलता हूँ
उबलता हूँ
उबलता हूँ
कर ता कुछ सकता नहीं।

[क्रोध अभिमान भी मुझी को अर्पित कर दो
तस्मिन्नेव करणीय क्रोधमानादिकम्]
तुम भी कहोगे क्या
आओ!
सब कुछ खोया है जब मैंने
एक एक कर
मोह क्या इसी का करूँ?
क्रोध, अभिमान का?
इसको भी मांगते हो?
ले जाओ!



अर्द्ध स्वप्न का नृत्य

दीपक की लौ कापी
परदो मे लहर पडी

शीशे मे अनजाने तन के आभास हिले
अनदेखे पग मे जादू के घुँघरू छमके
कालीनो के ऊनी फूल दबे और खिले
थाप पडी पहले कुछ तेजी से, फिर थम के

किसने छेडी पिछले
जनमा मे सुनी हुई
एक किसी गाने की
पहली रगीन कडी

अगहन के क्वाहरे स निर्मित हल्के तन के
टाने महमा जैसे कमरे म घूम गये —
हाथो मे ताजी कलिया के कँगने खनके
कन्धा पर वेणी के फूलमाप झूम गये

दीपक के हिलते
आलोका का छेड गयी
चम्प की लहराती
गाह वडी - वडी

इन वहकी घडियो की गहरी खामोशी मे
जाने कब रात हुई जाने कब बीत गयी
मन के अँधियारे मे उभरे धीमे-धीमे
रगो के द्वीप नये, वाणी की भूमि नयी

मणियो के कूल नये
जिन पर हम भूल गये
लक्ष्यहीन यात्राआ की
वह सुनसान घडी

नतन यह सोच कहा मुझको ल जायेगा
क्या ये सब पिछली तट-रेखाएँ छूटेगी
या दीपक गुल होगा उत्सव थम जायेगा
गीता की सब कडिया सिसकी म टूटेगी

जाने क्या होना है ?
सच है या टोना है ?
या यह भी खोना है ?
छलना की एक लडी !

दीपक की लौ कापी
पर्दो मे लहर पडी



वाते

मपनो मे डूबे-से स्वर म
जब तुम कुछ भी कहती हो
मन जैसे ताजे फूलो के झरनो मे धुल जाता है
जैसे गन्धर्वो की नगरी मे गीतो से
चन्दन का जादू-दरवाजा खुल जाता है

बातों पर बातें, ज्यों जूही के फूलों पर
जूही के फूलों की परतें जम जाती हैं
मन्त्रों में बँध जाती हैं ज्यों दोनों उम्रें
दिन की ढलती रेशम-लहरें थम जाती हैं !

गोधूली में चरवाहा की वंशी जैसे
शब्द कहीं दूर, कहीं दूर अस्त होते हैं

खामोशी छाती है
एक लहर आती है
सहसा दो नीरव होठों की सार्थकता
दो काँपते होठों तक आने में रह जाती है !



साँझ के बादल

ये अनजान नदी की नावें
जादू के-से पाल
उड़ाती
आती
मन्थर चाल !

किरन पर किरनों
की साझी
एक न डोरी
एक न माझी
फिर भी लाद निरन्तर लाती
सेन्दुर और प्रवाल ।

कुछ समीप की
कुछ सुदूर की
कुछ चन्दन की
कुछ कपूर की
कुछ म गेरू, कुछ म रेशम
कुछ मे केवल जाल ।

ये अनजान नदी की नाव
जादू केन्से पाल
उडाती
आती
मन्थर चाल



यह ढलता दिन

यह ढलता दिन, बिखरे बादल, बेहद डूबा-डूबा सा जी
जैसे कोहरे मे डूबी हो रंगीन गुलाबो की घाटी
अनजान दिशाओ मे जाती यह श्याम घटाओ की रेखा
मटमैले आचल पर मोती-सा
चाद ढलक आया लेकिन —
मैने जो आसू पोछ लिया, किसने जाना? किसने देखा?

नावों ने लंगर डाल दिये, घाटों पर सन्ध्या-दीप जले
मेले से सब राही लौटे, अपनी-अपनी चौपाल तले
गहना गुरिया, पखे डलिया, टिकुली बेंदी, सेन्दुर सारी-
सोरह सिंगार सजे, मग्न गाँव
उनींदा हो आया लेकिन –
सुनसान कछारों से मुझको आवाज किसी ने सहमा दी

आवाज मगर वह झूठी थी, नावें झूठी, मेले झूठे –
ये बादल शक्ल बदलते हैं, बादल उमड़े, बादल टूटे
जी टूटा सा था बहक गया, यह बादल का ताना-बाना
कुछ गाँव बसे, कुछ गाँव मिटे
बाँहों में चुपके से लेकिन –
मैंने जो आँसू पोछ लिया, किसने देखा ? किसने जाना ?

यह बादल का ताना-बाना
बेहद डूबा-डूबा सा जी
जैसे कोहरे में डूबी हो
रंगीन गुलाबों की घाटी



धुधली नदी मे

आज म भी नही अकेला हूँ
शाम ह, दद हे, उदासी ह

एक खामोश साझ तारा हे
दूर छूटा हुआ किनारा ह
इन सभा मे वडा सहारा है
एक धुँधली अथाह नदिया ह
और वहकी हुई दिशा भी हे

नाव को मुक्त छोड देने मे
और पतवार तोड देने म
एक अज्ञात मोड लेने म
क्या अजब-सी, निराश सी,
सुख-प्रद, एक आधारहीनता सी है

प्यार की बात ही नही साथी
हर लहर साथ-साथ ले आती
प्यास ऐसी कि बुझ नही पाती,
और यह जिन्दगी किसी सुन्दर
चित्र मे रगलिखी सुरा-सी है

शाम है, दद है, उदासी है
आज म भी नही अकेला हूँ



शाम दो

एक

शाम है म उदास हूँ शायद
अजनवी लोग अभी कुछ आयें
देखिए अनछुए हुए सम्पुट
कौन मोती सहेज कर लाये
कौन जाने कि लौटती वेला
कौन से तार कहाँ छू जाये ।

बात कुछ और छेड़िए तब तक
हो दवा ताकि बेकली की भी,
द्वार कुछ बन्द, कुछ खुला रखिए
ताकि आहट मिले

देखिए आज कौन आता है —
कौन-सी बात नयी कह जाये,
या कि बाहर से लौट जाता है
देहरी पर निशान रह जाये,
देखिए ये लहर डुबोये, या,
सिर्फ तटरेख छू के बह जाये,

कूल पर कुछ प्रवाल छूट जाये
या लहर सिर्फ फेन वाली हो
अधखिले फूल सी विनत अंजुली
कौन जाने कि सिर्फ खाली हो ?

दो

वक्त अब बीत गया बादल भी
क्या उदास रंग ले आये,
देखिए कुछ हुई है आहट-सी
कौन है ? तुम ? चलो भले आये !
अजनबी लौट चुके द्वारे से
दर्द फिर लौट कर चले आये

क्या अजब है पुकारिए जितना
अजनबी कौन भला आता है
एक है दर्द वही अपना है
लौट हर बार चला आता है

अनलिखे गीत सब उसी के हैं
अनकही बात भी उसी की है
अनउगे दिन सभी उसी के हैं
अनहुई रात भी उसी की है
जीत पहले पहल मिली थी जो
आखिरी मात भी उसी की है

एक-सा स्वाद छोड
जिन्दगी तृप्त भी व
लोग आये गये वर
शाम गहरा गयी, उदा

■

अँधेरे का फूल

रात आधी बीतने पर
डूब जाता चाद
एक वहुत विशाल जादू-फूल खिलता है
अँधेरे का
गली, आगन, छत, मुँडेरो से
काँपती काली पँखुरिया उभरती ह

कुछ अँधेरी, कुछ उजागर
ये कई गलियाँ
दीखती है उम वडे फूल से उलझी
तुम्हारी गोर-सावर उँगलिया

और मेरा मन
कभी उम फूल के अन्दर कभी वाहर
भटकता है—
उस भ्रमर-सा
फूल ने जिनको न रक्खा कैद
लेकिन मुक्त भी छोडा नही ।



यादों का वदन

यादों का बना हुआ वदन

कांपते अँधेरे में
बाहों के घेरे में
चुपके से आकर सो जाता है

छाया की रेखा सा
बिलकुल अनदेखा सा
सांसों में बसता है
अंग-अंग कसता है
रसभीने बन्धन में
करवट लेता है—सो जाता है

यादों का बना हुआ वदन



आँगन-वेली

फूली है आँगन की वेल

ओसधुला एक गन्धिल गुच्छा
अनजाने में
कोहनी से छू गया।

पहले भी ऐसा होता था बहुधा
लेकिन
आज जगा एक अजब संवेदन
बिजली-सा नया-नया

वह भी थी आँगन की वेल
किन्तु
महक रही आज बड़ी दूर से
आज गन्धिल गुच्छे फूले होंगे
घुले हुए—
चंदन से, आँसू से, ओस में, कपूर में।

■

ढीठ चाँदनी

आज-कल तमाम रात
चाँदनी जगाती है

मुँह पर दे-दे छींटे
अधखुले झरोखे से
अन्दर आ जाती है
दबे पाँव धोखे से

निंदिया उचटाती है
बाहर ले जाती है
घण्टों बतियाती है
ठण्डी-ठण्डी छत पर
लिपट-लिपट जाती है
विह्वल मदमाती है
बावरिया बिना बात।

आजकल तमाम रात
चाँदनी जगाती है



१०

दिन ढले की वारिश

बारिश दिन ढले की
हरियाली–भीगी, बेदम, गुमसुम
                    तुम हो

और,
और वही बऊग्वाई मुद्रा
कोमल शब्द वाले गले की
वही युवती मुँदी पलक सीपी में खाता हुआ पछाड़
बेजबान समंदर

१४

अन्दर
एक टूटा जलयान
थकी लहरों से पूछता है पता
दूर-पीछे छूटे प्रवालद्वीप का

बाँधूँगा नहीं
सिर्फ अपनी उँगलियों से छू लूँ तुम्हें
जाने कौन लहरें ले आयी हैं
जाने कौन लहरें वापस बहा ले जायेंगी

मेरी इस रेतीली वेला पर
एक और छाप छूट जायेगी
आने की, रुकने की, चलने की

इस उदास बारिश की
पास-पास चुप बैठे
गुमसुम दिन ढलने की !



१०

दिन ढले की बारिश

बारिश दिन ढले की
हरियाली-भीगी, बेनम, गुमसुम
तुम हो

और,
और वही नटखाई मुद्रा
कोमल शंख वाले गले की
वही झुकी मुँदी पलक सीपी में खाता हुआ पछाड़
बेजबान समन्दर

अन्दर
एक टूटा जलयान
थकी लहरो से पूछता है पता
दूर–पीछे छूटे प्रवालद्वीप का

बाधूगा नही
सिर्फ कापती उँगलियो से छू लूँ तुम्हे
जाने कौन लहरें ले आयी हैं
जाने कौन लहरे वापस बहा ले जायेगी

मेरी इस रेतीली वेला पर
एक और छाप छूट जायेगी
आने की, रुकने की, चलने की

इस उदास बारिश की
पास-पास चुप बैठे
गुमसुम दिन ढलने की !



शाम, एक थकी लडकी

नीद-भरी, तरलायित, बडरी, कटावदार आखे मूँद
शाम—
एक सफर मे थकी हुई लडकी-सी
आयी और मेरे पास बैठ गयी

बैठी रही गुमसुम धीमे
से उठी,
और कसे हुए अंग ढील
उतर गयी
गुनगुनी धूप की नदी में

सांवला सलोना जिस्म
कुछ क्षण लहरों के हिलकोरों पर
कांपा
फिर घुलने लगा—
घुलने लगा पानी की लपटों में
नीली मोमबत्ती-सा।

ओ जल निमग्ना!
ओ लहर विह्वल!
अपने को थामो, सँभालो—

मैं हूँ नदी तल की रेत।
अर्पित हूँ,
लेकिन किसी भी क्षण पाँवों तले से
बह जाऊँगा

अन्तहीन यात्री

विदा देती एक दुबली बाह-सी
यह मेड
अंधेरे मे टूटते चुपचाप
वढे पड

एक छवि

छिन म धूप
छाह छिन आझल,
पल पल चचल–
गोरी दुबली, वेला उजली, जैसे बदली क्वार को

चैत का एक दिन

सूरज मे नहाये हुए
नीले कमल-सा यह चैत का नशीला दिन
मैंने बिताया नही
केवल गुजार दिया

१५

बेसुध तुम्हारे पास बैठे हुए
रूखी तुम्हारी मुक्त वेणी को
उँगली में बार-बार प्यार से लिपटा कर
अनबाँधे छोड़ दिया

निंदियारी आँखों में
बार-बार देखने की कोशिश की—
देखा नहीं,
और लदी नाजुक टहनी सी इस देह की
हलकी गरमाई को केवल महसूस किया,
जाना नहीं

शाम हुई
केवल तुम्हारी रूपगन्ध में पगा मन
टूट-टूट रह-रह अलसाने लगा
मैंने कुछ नहीं किया
धीमे से तुम्हारे माथे पर झुके
रूखे हठीले एक कुन्तल को
हाथों से सँवार दिया

सुनो
सच बतलाना
क्या तुमको कभी भी
किसी ने भी
इतना उजला, कोमल, पारदर्शी प्यार दिया ?



फूल, सागर, सीपी

[तुम्हारे हाथोंमें लाल फूलोंका एक
गुच्छा देखकर]

फूल
का अधखिला अन्तस्
एक रंगीन लहराता अतृप्त सागर है—
तुम्हारी मुलायम उँगलियों के तटों में
बेरम-सा टकरा कर बार-बार अपने में
वापस लौट आता है

कुछ भीगी मणियाँ
कुछ आँसू-सा खारा फेन
किसी निवसना जलपरी का लज्जाभीत कम्पन
नियति के टुकड़ा-सा
छट-छूट जाता है
मुट्ठी में तुम्हारी

क्वारी,
हल्की, रतनारी सीपी-से
दो पतले होठ
आतुर हिलकोरों में रह-रह कर कँपते है

क्या यह उमड़ता, अमर्यादित, व्याकुल ज्वार
इन पतले होठों में बँध कर
सिमट जायेगा
स्वाती की केवल एक बूँद-सा पकने को—
पीड़ा में गहरे डूब कर मोती रचने का—
सब कुछ टूट जाने पर भी अटूट बचने का—

कोमल तुम्हारी उँगलियों में
खिलने को आतुर
एक बँधा फूल सागर का ?

दूसरे दिन सुबह

शेष है अब भी हवाओं में
एक हलकी लहर लेती महक
उस खिलते गुलाबी जिस्म की
प्यार से नीले पड़े रतनार होंठों की खनक
पत्तियों में शेष है अब भी

अभी तक उलझा हुआ है
सांस की हर गुजलक में
वह लहर पर लहर लेता रूप
मृदुल कुछ-कुछ गुनगुने-से देह के स्पर्श से
अब भी घुली है सुबह की बारीक कच्ची धूप !

वह तुम्हें पाने न पाने की अजब-सी टीस
रीती नहीं—रीती नहीं
शाम में घुलती हुई वह फूल-सी दुपहर
बीत कर भी अभी बीती नहीं—बीती नहीं



अँजुरी भर धूप

अँजुरी भर धूप-सा
    मुझे पी लो !
कण-कण
    मुझे जी ला !

जितना हुआ हूँ आज तक मैं किसी का भी—

बादल नहायी घाटियों का,
पगडण्डी का,
अलसायी शामा का,
जिन्हें नहीं लेता कभी उन भूले नामों का,

जिनको बहुत बेबसी में पुकारा है
जिनके आगे मेरा सारा अहम् हारा है,
गजरे-सी बाहों का
रंग रचे फूलों का,
बौराये सागर के ज्वार-धुले कूलों का,
हरियाली छाहों का
अपने घर जानेवाली प्यारी राहों का—

जितना इस मन का हूँ
उतना कुल मिला कर भी थोड़ा पड़ेगा
मैं जितना तुम्हारा हूँ

जी लो
मुझे कण-कण
अँजुरी भर
पी लो।



घाटी का बादल

जाने कब, किस गुहानीड में उड़कर गुपचुप
मेघधूम का योजन विस्तृत पखी सहसा
प्रकट हो गया घाटी सुदूर छोर पर
गहरे भूरे, मीठे लम्बे डैने खोले

प्रातधूप की जरतारी ओढ़नी लपेटे
अभी-अभी जागी
खुमार से भरी
नितान्त कुमारी घाटी
इस कामातुर मेघधूम के
औचक आलिंगन में पिस कर
रतिश्रान्ता सी मलिन हो गयी।

थका हुआ बादल
पश्चिम के श्याम निरावृत शिखरों पर
शीतल कपाल धर
क्षण-भर गहरी नींद सो गया,

धीरे-धीरे
मूर्च्छित घाटी में जैसे कुछ साँस लौटी
अग्नि झरारे देवदारु में, चीड़कुंज में
गन्ध उन्दे-मादक भीगे से

१६

मेघधूम ने करवट ली—
अँगड़ाई में ज्यों
सौ-सौ गहरे भूरे डैने आगे पसरे,
उड़े,
खड़े पवन शिखरों में टकरा कर
मँडराये
मुड़े—
चट्टानों में
दर्रों में भटके
फिर ढालों पर धीमे-धीमे हाँफ-हाँफ कर चढ़ने लगे
बटोही-जैसे।

जहाँ अभी घाटी थी लहरधारियों वाली
हरे खेत थे
लाल छतों वाले छोटे पर्वती गाँव थे
वहाँ नहीं है कुछ भी अब
वह जादू था
वह इन्द्रजाल था
लुप्त हो गया!
सच है केवल मेघधूम यह
ढालों में टकराते क्षीर-महासागर-सा
फेंक रहा है उजला फेना

लाल छतों वाले छोटे पर्वती गाँव
या हरे खेत
या लहरधारियों वाली घाटी
ये थे केवल मूँगा मछली सीप सिवारे
जो धाराओं की उछाल में ऊपर आये

कुछ क्षण ऊपर तैरे फिर जगमग हो गये ।

नीचे मेघधूम का सूना-सूना सागर
ऊपर केसर नभ
गुमसुम-सा, उदासीन-सा
और बीच मे गिरजाघर सा खिला चीड का पूरा चमन ।

कैसे अचरज खड़ा है
क्या यह भी जादू है ?

डालो पर चुपचाप खड़े हैं
शाखा के छितरे-छितरे वन ।
उलटी हुई पुतलियां-जैसे
शाखो के नोकीले पत्ते
उलटे औ फिर
श्वेत हो गये ।

नीचे से कटक झाडो म अटक-अटक कर
ऊपर चढ़ता जाता है अजगर-सा बादल
तने, डालियां, पत्त पहले भूरे पडते,
लगता जैसे पीछे हटते
धीरे-धीरे पुँछी लकीरों-से मिट जाते ।

कुछ भी नही रहा
उत्तुग शिखर वाला गरवीला पवत
रगो के कच्चे धब्बे सा धुला, बह गया—
घाटी, गाव, खेत, वन, झरने
सकल सृष्टि ज्यो बुझा धुँआ अणुओ म

विशृंखल विभक्त हो बिखर गयी है !
शेष बचा हूँ केवल मैं
या मेरे चारों ओर दूर तक फैला हुआ सफ़द अँधेरा

बाकी सब कुछ नष्ट हो गया
गाव, जहाँ पर मेरा घर था
पगडण्डी, जिन पर चल मैं शिखरों तक पहुँचा
जंगल, जिसमें बडी साझ तक भटका खोया
झरने, जिनमें थके धूल से सने पाव धो
थकन मिटायी,

सब कुछ—सब कुछ—नष्ट हो गया

शेष बचा हूँ मैं
या मुझको घेरे उजली धूम्र-शून्यता ।

धीरे-धीरे हार रहा हूँ,
इस ऊँचाई पर चढकर ही
जान सका हूँ—हम सब
क्या हैं ?
सिफ,
बहुत ऊँचे पहाड पर चढते बौने ।

बौना—जिसको केवल दो पग दीख रहा है
दो पग आगे
दो पग पीछे
दो पग ऊपर
दो पग नीचे
दो पग की ही केवल जिसकी ज्ञान-परिधि है !

कहा पडेगा गलत कदम
औं' मीलो लम्बी घाटी मुझको खा जायेगी।

यह अथाह शून्यता
डरा मै
हाथा से टटोल कर किसको खोज रहा हूँ
यह है पत्थर, ये हैं जडे
किन्तु यह क्या है ?
अँधियारे मे नरम परम मा
किसका हाथ छू गया मुझको ?

"म हूँ एक दूसरा बौना
पगडण्डी से जरा अलग हट
साथ तुम्हारे मैं चलता आया हूँ अब तक।
हारो मत, साहस मत छोडो
मै भी हूँ बौना, वामन हूँ
किन्तु तीन पग मागे है मैने धरती से
दो पग तुमको दीख रहा है
उसे पार कर बढो
तीसरा पग ता मुझम सार्थक होगा
मुझ पर छोडो,

हर मनुष्य बौना है लेकिन
मैं बौना म बौना ही बनकर रहता हूँ
हारो मत, साहस मत छोडा
इससे भी अथाह शून्य म
बौना ने ही तीन पगा म धरती नापी।"

पतला पड़ने लगा
दृष्टिरोधी वह परदा
सहसा मुखर हो उठी वह निश्शब्द शून्यता

दीखे नही,
मगर चीड़ो ने सन सन कर मदमाती गन्धो वाले
पवन सँदेसे भेजे
झुरमुट मे सहमी चिड़िया ने
दबे कण्ठ से मुझे पुकारा
दूर कही सुन पड़ा पहाड़ी गाने का स्वर।

थोड़ा-सा विश्वास लौट कर आया मुझमे
दीख नही पड़ते हैं
पर इस गहन कुहा म
कितने ही जगली रास्ते आते-जाते
पथिको से अब भी सजीव ह
अपराजित है जिनमे चलने की आकाक्षा।
दीख नही पड़ता ह सूरज
पर दो शिखरो बीच झर रही
दिव्य ज्योति सी धूप धुँईली।

नदियाँ नीचे चमक उठी रुपाडोरी सी
और दूधिया शीशे मे से
झलक उठे ह वृक्ष वाझ के, पुल लोहे के,

धीरे-धीरे परतें कटने लगी धूम की
यहाँ वहाँ पर
पिघले सोने के पानी सी
धूप टपकने लगी
गाव खिल गये फूल-से

बादल जैसे आया वैसे लौट गया है

केवल कुछ बादल के पीछे छूटे टुकडे
छायादार झाडियो म विश्राम कर रहे
जैसे धौरी उजली गायें

एक अकेला चचल बादल
चादी के हिरने सा घाटी म चरता है !



कवि परिचय

[जन्म २५ सितम्बर १९२६]

प्रयाग विश्वविद्यालयसे एम ए , पी एच् डी , पहले वहीं हिन्दी प्राध्यापक, अब 'धर्मयुग'-सम्पादक ।

अन्य कृतियाँ ठण्डा लोहा (कविताएं), गुनाहोंका देवता (उपन्यास), अन्धा युग (गीतिनाट्य), सूरजका सातवाँ घोड़ा (उपन्यास), चाँद और टूटे हुए लोग (कहानियाँ), ठेलेपर हिमालय (निबन्ध), नदी प्यासी थी (नाटक), मानव मूल्य और साहित्य (निबन्ध), ऑस्करवाइल्डकी कहानियाँ (अनुवाद), कनुप्रिया (काव्य), देशान्तर (समकालीन विदेशी काव्य) ।

•